शिक्षा, मूल्य एवं समाज

❑ सरिता सिंह

शिक्षा में मूल्यों का समावेश ऐसी मान्यता है जो शायद शिक्षा के उद्‌गम से ही उससे जुड़ी है । लेकिन शिक्षा में मूल्यों के निहितार्थ शैक्षिक नीति-नियंताओं के अनुसार बदलते रहते हैं । यदि सामाजिक मूल्य संरचना और शिक्षाक्रम की मूल्य संरचना में अंतर होता है तो इससे तनाव उपजना स्वाभाविक है । लेकिन भारत जैसे सांस्कृतिक बहुलताओं वाले देश में यदि हमें शिक्षाक्रम का आधार जनतांत्रिक मूल्य संरचना को ही बनाना है तो इस तनाव का सामना करना होगा और एक व्यापक सर्वानुमति बनानी होगी ।

'शिक्षा' - एक गत्यात्मक अवधारणा होने के कारण समयानुसार परिवर्तित होती रहती है, इस अवधारणा की व्याख्या एवं विश्लेषण प्रत्येक व्यक्ति अपनी मान्यताओं एवं आदर्शों के अनुरूप करता है । समय-समय पर शिक्षा में छात्र दृष्टिकोण से, उनके लक्ष्यों के अनुसार एवं राष्ट्रीय संदर्भों में नवीन अर्थ प्रदान किये जाते रहे हैं ।

शिक्षा की अवधारणा एक विवादित विषय है लेकिन किसी भी प्रकार की प्रक्रिया को शिक्षा नहीं कहा जा सकता क्योंकि अपने न्यूनतम स्तर पर भी शिक्षा सीखने की प्रक्रिया से संबंधित है । शिक्षा का उद्देश्य 'साक्षर' करने तक सीमित न होकर मनुष्य को 'शिक्षित' करने से है । पश्चिम में शिक्षा की इस अवधारणा के जन्म का संबंध 19 वीं शताब्दी में हुए औद्योगिकीकरण से माना गया है, जिसमें शिक्षा के उद्देश्य मनुष्य की भौतिक चेतना का विकास कर उसे 'पूर्ण -मनुष्य' बनाने से संबंधित है ।

शिक्षा मनुष्य में जागरुकता का विकास करती है व उन संदर्भों को पूर्ण करती है जिससे जागरुकता और भी अधिक विस्तृत, गहन, संवेदनशील एवं अनुशासित हो जाये । यह सब निर्भर करता है प्रथमत: उन मूल्यों पर जिनके द्वारा समाज मनुष्य जीवन के विभिन्न पहलुओं का सामना करता है, द्वितीय वे सूचकांक जो एक शिक्षाकर्मी द्वारा चयनित किये जाते हैं । यह सूचकांक डूवी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को इंगित करते हैं । जिनके अनुसार शिक्षा सामाजिक क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण घटक है जो कि सूचना एवं ज्ञान के विस्तार, विकास एवं उत्पत्ती में सहायक होती है । शिक्षा समाजीकरण के माध्यम से अनेक मूल्यों के आंतरीकरण में एक सहायक भूमिका निर्वाह कर ज्ञान के स्तर का निर्माण करती है ताकि विभिन्न परिस्थितियों में उपयुक्त व्यवहार संपन्न किये जा सकें । शिक्षा एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया है । जो स्थानीय से सार्वभौमिकरण की तरफ, सांस्कृतिक सामाजीकरण से विषमांगीकरण की और अग्रसर होती है एवं भावनाओं का तार्किकता से तालमेल कर सामाजिक इकाई में वैज्ञानिक तार्किक ज्ञान का विकास कर मनुष्य को सहिष्णु बनाती है । इस प्रकार आज के समसामयिक समाज में शिक्षा उस संस्कृति का निर्माण कर रही है जो कि मनुष्यत्व व समानता के मूल्यों पर आधारित हो ।

भारत एवं विदेशों में अनेक शिक्षाविदों ने शिक्षा के माध्यम से मूल्यों की महत्ता को प्रमाणित करने पर बल दिया है जो कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रहे हैं। राधाकृष्णन आयोग (1949) के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सत्य के वैज्ञानिक सत्यापन के साथ-साथ, मूल्यों की महत्ता पर भी ध्यान केन्द्रित करना है ।

कोठारी-आयोग (1964-66) ने शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रकार्यों में उपयुक्त रुचि, विचार, नैतिकता, दृष्टिकोण एवं बौद्धिक मूल्यों के विकास को समाहित किया । 1986 में ''शिक्षा की राष्ट्रीय नीति'' में इस बात पर चिन्ता प्रकट की गई कि आज महत्वपूर्ण व आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है । जिससे समाज में अनिश्चितता, संदेह व अविश्वास की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि पाठ्यक्रमों का पुर्नमूल्यांकन किया जाये ताकि शिक्षा को सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के आंतरीकरण हेतु एक महत्वपूर्ण व उपयोगी उपकरण के रूप में विकसित किया जा सके ।

शिक्षा का समर्पण नैतिक मूल्य के प्रति होता है, अत: प्रत्येक समाज को ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करनी चाहिये जो कि उसकी संस्कृति के अनुरूप हो । यह प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अच्छे-बुरे, नैतिक-अनैतिक, त्याग व स्वार्थ विषयक व्यवहार के अंतर को स्पष्ट करे । विद्यार्थी में ऐसी तार्किक व संवेदनशील भावना का विकास करे जिससे वह उपयुक्त कारणों से स्वयं को समर्पित कर सके ।

विद्यालय एवं विश्वविद्यालय एक ऐसा स्थान है जहां विद्यार्थी ज्ञान-आदर्शों एवं मूल्यों की खोज में जाते हैं और हम यह मानकर चलते हैं कि शिक्षाविद अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत होते हैं व सदैव सत्य ज्ञान के अन्वेषण में कार्यरत रहते हैं ताकि विद्यार्थियों

में उच्च आदर्शों एवं उचित मूल्यों का विकास कर सकें। यह उनका कर्तव्य एवं जिम्मेदारी है कि वे जब भी उन सब से विद्यार्थी को वंचित पायें तो उनमें उचित मूल्यों व व्यवहार के उचित मानदण्डों का विकास करें । अगर विद्यालय विद्यार्थियों में उचित मूल्यों का विकास कर पाने में सक्षम नहीं है तो कोई भी ऐसा अन्य माध्यम नहीं है जो कि इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सके । पूर्व में इस भूमिका का निर्वहन धर्म व परिवार के माध्यम से होता था, ये विद्यार्थी जीवन को ढालने की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे परन्तु समय के साथ उनका प्रभाव लुप्तप्राय: सा हो गया है । इन परिस्थितियों में विद्यालय का दायित्त्व महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह इस उत्तरदायित्व का वहन करे व विद्यालय में उचित व स्वस्थ्य, सामाजिक, राजनैतिक एवं भावनात्मक मूल्यों का विकास करे ताकि आगे चलकर विद्यार्थी वर्ग समाज व देश के विकास में अपना योगदान कर उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें ।

जटिल समाजों में मूल्य-संघर्ष अनन्त हैं व समयानुसार परिवर्तित होते हैं । मूल्यों में परिवर्तन से लोकरीतियां व लोकाचार प्रभावित होते हैं । प्रत्येक समाज में मूल्य-संक्रमण पाया जाता है, कुछ मूल्यों को अन्यों की तुलना में महत्ता प्रदान की जाती है । एक सरल व बन्द समाज में व्यक्तियों की सामान्यत: एक मूल्य के प्रति आम सहमति होती है, परन्तु जटिल व खुले समाज में मूल्य-संघर्ष पाया जाता है ।

जटिल समाजों में मूल्य–संघर्ष अनन्त हैं व समयानुसार परिवर्तित होते हैं । मूल्यों में परिवर्तन से लोकरीतियां व लोकाचार प्रभावित होते हैं। प्रत्येक समाज में मूल्य–संक्रमण पाया जाता है, कुछ मूल्यों को अन्यों की तुलना में महत्ता प्रदान की जाती है । एक सरल व बन्द समाज में व्यक्तियों की सामान्यत: एक मूल्य के प्रति आम सहमति होती है, परन्तु जटिल व खुले समाज में मूल्य–संघर्ष पाया जाता है ।

एक ही समुदाय के व्यक्ति समस्त मूल्यों को उसी गहनता एवं भावना से नहीं अपनाते हैं । मूल्यों में समय के साथ परिवर्तन होते हैं, परन्तु कुछ मूल्य समय के साथ अपनी महत्ता खो देते हैं । ये व्यक्ति को दिशानिर्देश प्रदान करने में सक्षम नहीं होते व संतुष्टि का भाव/स्तर प्रदान नहीं कर पाते । दुर्खीम द्वारा प्रस्तुत 'एनॉमी' की अवधारणा मूल्य-संघर्ष की स्थिति को दर्शाती है । जिसमें व्यक्ति अपनी वर्तमान परिस्थिति में सही-गलत, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक का भेद समझ पाने में सक्षम नहीं होता है ।

अनुभवों में परिवर्तन के साथ ही मूल्यों में परिवर्तन होता है, यह परिवर्तन संतुष्टि प्रदान करता है या नहीं यह दूसरा प्रश्न है । किसी एक समय समाज में समानता व लोकतंत्र का प्रभुत्व होता है, महिलाओं की प्रस्थिति पुरुषों के समान होती है तो किसी समय महिलाओं की स्वतंत्रता घर तक सीमित कर दी जाती है । औद्योगिकी करण, प्रौद्योगिकी विकास व राजनैतिक क्रिया-कलापों में सामाजिक मूल्यों को काफी हद तक प्रभावित किया है ।

प्रेम कृपाल ने सामाजिक संदर्भ में मूल्यों के औचित्य का निरीक्षण किया है । यह जानते हुए कि मूल्यों में ह्रास ने सभी समाजों को प्रभावित किया है उन्होंने इसकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्ता पर बल दिया है । उनके अनुसार गरीबी उन्मूलन व मानवीय संसाधनों का विकास तब तक संभव नहीं है जब तक विद्यार्थियों में मूल्यों का आत्मीकरण न किया जाये । इसी संदर्भ में शैक्षिक संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा कर मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करने में अतिविशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं।

शिक्षा में मूल्य-अभिमुखन के बारे में प्रेम कृपाल दो पद्धतियों का उल्लेख करते हैं - उपलब्ध आधारभूत संरचनाओं का गुणात्मक रूप से सुधार किया जाए, उनके बेहतर उपयोग पर जोर देकर व अगर आवश्यक हो तो उन्हें अन्य आवश्यक सुविधायें प्रदान की जायें । औपचारिक माध्यमों के अतिरिक्त अनौपचारिक व प्रौढ़ शिक्षा पद्धति का भी समन्वित विकास किया जाये, उनके अनुसार शिक्षा का केन्द्रीय आधार मूल्यपरक शिक्षा होना चाहिये । भारतीय संस्कृति का समिश्रित स्वरूप जो वर्षों की धरोहर है, उसके महत्व को समझा जाना चाहिए व अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को पाठ्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर सम्मिलित किया जाना चाहिये । शैक्षणिक संस्थाओं के साथ साथ मूल्यों के आन्तरीकरण में समाज की भूमिका बेहद विशिष्ट हो जाती है।

केवल पाठ्य पुस्तकें ही मूल्य-उन्मुक्त शिक्षा हेतु एक सक्षम भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकती, विशेषकर जब मूल्यपरक शिक्षा चरित्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण कारक है । प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यपरक व्यवहार भावनाओं, बुद्धिमत्ता व आत्मशक्ति का समन्वित स्वरूप होता है, क्योंकि मात्र बुद्धिमत्ता व्यवहार को तय नहीं कर सकती । अत: अपेक्षित व्यवहार हेतु बौद्धिकता एवं भावनात्मकता का संगम आवश्यक है । कोठारी-आयोग (1964-66) के अनुसार विस्तृत ज्ञान व बढ़ती शक्ति जिसने समाज को हाशिये पर ला खड़ा कर दिया है उसे सबल व गहन होते सामाजिक उत्तरदायित्व के माध्यम से नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के साथ जोड़ना आवश्यक है ।

यह वक्तव्य कि सफल नैतिक जीवन के निर्वाह हेतु कुछ मात्रा में प्रयासों व संकल्पों की आवश्यकता होती है । इमाइल दुर्खीम (एक फ्रांसिसी समाजशास्त्री) इस वक्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहते

हैं कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक प्रकार के नैतिक आचरण का विकास करना है जिसके बिना कोई भी समाज अस्तित्व में नहीं रह सकता है । यह वक्तव्य एवं इसमें छुपा मन्तव्य आज के संदर्भ में एक आह्वान है जबकि समाज की सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था का तीव्र गति से ह्रास हो रहा है ।

एक महत्वपूर्ण मुद्दा जो आज हमारे समक्ष है, वह है - शैक्षणिक समस्याओं का । इसके प्रमुख पहलू हैं सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परन्तु वह पहलू जो गहन रूप से शिक्षा से संबंधित है, वह है उसका नैतिक पक्ष ।

विद्यार्थियों के नैतिक मापदण्डों में भारी गिरावट परिलक्षित हो रही है एवं जब तक विद्यालय व विश्वविद्यालय इस चुनौती का सामना विश्वास व दृढ़ता से नहीं करते मूल्यों का और ह्रास हो जायेगा जो हमारी समाज की नींव को कमजोर कर देगा । आज के परिवेश में यह अति आवश्यक हो गया है कि हम शिक्षा के लक्ष्यों का पुर्नमूल्यांकन करें ताकि दिशाहीनता की स्थिति का सामना न करना पड़े ।

शैक्षणिक मूल्यों का निर्धारण समाज में प्रचलित लक्ष्यों एवं मान्यताओं के अनुरूप होता है, यह लक्ष्य एवं मान्यताएं प्रत्येक समाज एवं समय में समान नहीं होते, एवं सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें परिवर्तन आवश्यक है । हमारा समाज जो कि आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण एक तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, इस बदलते दौर में आवश्यक हो गया है कि हम अपने शैक्षणिक मूल्यों का पुर्ननिर्माण करें । यह विद्यालय व विश्वविद्यालय का दायित्व है कि वह उन मूल्यों को संरक्षण प्रदान करे जो हमारी परंपरा के स्वस्थ मूल्य हैं । और साथ ही परिवर्तन व आधुनिकरण की प्रक्रिया को भी अपनाये ।

अगर हम प्रौद्योगिकी को अनुकूल प्रकार से आत्मसात करें तो हमारे लिए यह संभव हो पायेगा कि हम उन सभी कठिनाईयों व संघर्षों की स्थिति से स्वयं को सुरक्षित कर पायें जो आज के आधुनिक समाज में व्याप्त हैं । प्रौद्योगिकी का बिना विचार अनुकरण या पूर्ण रूपेण निष्कासन किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता है । अत: आवश्यकता यह है कि देश-काल परिस्थिति व सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप ही प्रौद्योगिकी का वरण किया जाए ताकि समाज व सामाजिक संस्थायें जो वर्षों से चली आ रहीं हैं उन्हें क्षति न पहुंचे ।

स्वतंत्रता के पांच दशकों में जहां आर्थिक विकास के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है वहीं हमने अपने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति एक तटस्थता का रूप अपनाया व शैक्षणिक माध्यमों को उचित मार्गदर्शन प्रदान करने में असफल रहे ।

हमारे देश में शिक्षा संस्थान मात्र शिक्षा के स्थानान्तरण व ज्ञान-वृद्धी जैसी क्रियाओं तक सीमित रहे हैं । अत: आवश्यक यह है कि भविष्य में शिक्षा संस्थान समाज की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील रहें व सामाजिक एवं आर्थिक पुनरुत्थान के उपकरण के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करें । आज के क्रियाकलापों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर व समाज को अपनी मूल्यों के पुनर्निर्माण में सहायक भूमिका अदा करें । विश्वविद्यालय परिसरों में एक खुले संवाद की आवश्यकता है ताकि उससे सामाजिक लक्ष्यों, उद्देश्यों का निर्माण हो सके और यह तभी संभव है जब शिक्षाविद् समसामयिक सामाजिक व राजनैतिक मुद्दों में पूर्ण रुचि दिखायें जिससे उनके व विद्यार्थियों के मध्य दूरी कम की जा सके। आज का युवा वर्ग प्रचलित सामाजिक अवधारणाओं व मूल्यों के प्रति विद्रोहात्मक रूप अख्तियार किये हुए हैं, वे धर्म का बहिष्कार करते हैं या धार्मिक कट्टरता के शिकार, यौन संबंधों में अधिक खुलापन चाहते हैं, अन्धविश्वासी, रूढिवादी मान्यताओं का विरोध कर रहे हैं एवं उनका नेतृत्व से विश्वास उठ चुका है, जो कि दोहरे मापदण्डों पर आधारित है, और कुछ तो सार्वजनिक संस्थानों को नष्ट कर देना चाहते हैं क्योंकि वे उन्हें रोजगार प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं ।

शिक्षाविद् अगर विद्यार्थियों के तर्कों को उचित मानते हैं तब भी वे उनका पक्ष नहीं लेना चाहिते हैं क्योंकि वे अपने अधिकारियों को रुष्ट नहीं करना चाहते। उनका यह व्यवहार गैर जिम्मेदाराना एवं अनअपेक्षित हो सकता है परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह एक नयी विचारधारा की तलाश में हैं । जब पुराने मापदण्ड टूटते हैं और पुरानी पीढ़ी नये मापद्ण्डों के निर्माण करने में सक्षम नहीं होती तो यदि विद्यार्थी अपने तरीकों से नये मूल्यों का निर्धारण करें तो उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता है ।

अगर शिक्षाविद विद्यार्थियों को इस विषय में सहायता प्रदान करने में रुचि रखते हैं तो उन्हें कुछ पुराने मूल्यों को छोड़ना होगा, कुछ मूल्यों में परिवर्तन करना होगा व नये मूल्यों का निर्माण करना होगा । अत: मूल्यों की खोज आज भारतीय शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है ।

कोई भी पुन: निर्माण तब तक संभव नहीं है जब तक उचित मूल्यों के निर्माण पर गंभीर विचार न किया जाये, इसके लिए आवश्यक है कि हम एक तरफ अपनी समृद्धशाली सांस्कृतिक परंपरा व दूसरी तरफ आशाओं और संभावनाओं से पूर्ण भविष्य नजर में रखें ।

विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को चाहिये कि वह पूर्व प्रचलित समृद्ध मूल्यों का आधुनिक समय की वैज्ञानिक विचारधारा के साथ समन्वय कर युवा वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करें । यही चुनौती है जिसका सामना भविष्य में शिक्षा को करना है । ◆